E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2024; 6(1): 287-290
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 17-03-2024
Accepted: 19-04-2024

मनीष कुमार सैनी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
मनीष कुमार सैनी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर राजस्थान, भारत

पंचायती राज की अवधारणाः सामान्य अवलोकन

मनीष कुमार सैनी

सारांश
लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अर्थात् आम जनता का सत्ता में साझीदार निर्णय नीति से लेकर उपभोग तक बनने की व्यवस्था का नाम स्वशासन अथवा दूसरे शब्दों में पंचायती राज व्यवस्था है। विकेन्द्रीकरण को साकार बनाने का सर्वोतम ही नहीं अपितु एक मात्र साधन पंचायतीराज शासन व्यवस्था है, अर्थात् यह विकास विकेन्द्रीकरण व परिपक्व प्रजातंत्र का एक मात्र साधन है। लोकतंत्र मानव गरिमा, व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता, राजनीतिक निर्णयों में जन भागीदारी के कारण शासन का श्रेष्ठतम रूप माना जाता है। लोकतंत्र का आधार शासन में जन सहभागिता के साथ ही स्थान एवं शक्तियों का निम्न स्तर तक विकेन्द्रीकरण है, उसी भावना का साकार स्वरूप पंचायती राज व्यवस्था है। प्रस्तुत शोध आलेख में स्थानीय स्वशासन के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु देश की अतीत से चली आ रही ऐतिहासिक शासन व्यवस्था व स्वतंत्रता के पश्चात् तथा 73वां संविधान संशोधन के सांगठनिक प्रक्रियागत, विकेन्द्रीकरण के विशेष संदर्भ को चुना गया है।

कूटशब्दः विकेन्द्रीकरण पंचायती राज, लोकतंत्र, स्वशासन, सामुदायिक विकास कार्यक्रम

प्रस्तावना
भारत गाँवों का देश है और इसकी आत्मा गाँवों में निवास करती है। गाँव ही हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के स्रोत एवं केन्द्र रहे हैं। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों, वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं संहिताओं में ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों पर विस्तार से वर्णन मिलता है। प्राचीन काल में छोटे–छोटे राज्य, जन या जनपद कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक विश होते थे जिनका मुखिया विशपति कहलाता था। ग्राम सबसे छोटी ईकाई थी और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे, इनका मुखिया ग्रामणी कहलाता था। ग्रामणी ग्राम के श्रेष्ठ और वयोवृद्ध लोगों से सलाह करके अपना काम करता था और यह ग्राम पंचायत का आदिम स्वरूप था।[1]
वैदिक युग में ग्रामीण शासन महत्वपूर्ण माना जाता था। गाँव की पंचायतें गाँव के लोगों द्वारा संगठित होती थी, प्रशासकीय और न्यायिक कार्यों का सम्पादन करती थी। वैदिक मंत्रों में ग्रामों की समृद्धि के लिए अनेक प्रार्थनाएं की गई हैं। वेदों में ग्राम के अधिकारी को ग्रामणी कहा गया है। वैदिक काल में राज्य छोटे–छोटे होते थे, इस कारण ग्रामों का महत्व और भी बढ गया था। वैदिक युग में राजा का निर्वाचन जनता द्वारा निष्पक्ष रूप में होता था। लोकविरूद्ध कार्य करके कोई भी राजा पद पर बना नहीं रह सकता था। प्रजा का प्रतिनिधित्व सभा और समिति करती थी।
प्राचीन काल में निर्णय सर्वसम्मत हुआ करते थे। पंचायत प्रतिनिधि व पदवाहक अपने दायित्वों का निर्वहन निष्काम भाव से त्यागपूर्ण किया करते थे। रामायण व महाभारत काल में ग्राम का शासन ग्राम के मुखिया के निरीक्षण और निर्देशन में चलता था। ग्राम के मुखिया का पद आनुवांशिक था, परन्तु सरकार को अधिकार था कि यदि उत्तराधिकारी अयोग्य हो तो उसी वंश के किसी दूसरे व्यक्ति को मुखिया बना दे। मुखिया का पद ग्राम शासन में सबसे महत्वपूर्ण होता था तथा उसका कर्तव्य ग्राम की रक्षा एवं सरकारी करों को एकत्रित करना था।
कौटिल्य की रचना अर्थशास्त्र में भी स्थानीय शासन का उल्लेख है प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से कौटिल्य ने समग्र राष्ट्र को दो भागों में विभक्त किया गया है–पुर व जनपद। पुर से कौटिल्य का अभिप्राय नगर या राजधानी से और जनपद का संबंध ग्रामों से है। जनपद की सबसे छोटी बस्ती को ग्राम और दस ग्रामों के संघटन से 'संग्रहण' नामक राजकीय कार्यालय की स्थापना का निर्देश किया है। दस–दस ग्रामों के उक्त क्रम से, दो सौ ग्रामों का संघटन करके एक क्षेत्र का निर्माण और उसमें 'खार्वटक' नाम की बस्ती बसाये जाने की व्यवस्था दी गई है। चार सौ गाँवों का संघटन कर उनके शासन के लिए द्रोणमुख और आठ सौ गाँवों के बीच स्थानीय नाम की बस्ती बसाने का कौटिल्य ने आदेश दिया है।[2]

मौर्ययुग में ग्रामीण प्रशासन पूर्णतः कृषि से संबद्ध था। ग्रामीण जीवन के संबंध में मौर्य शासन में प्रत्येक गांव में एक सभा होती थी, जो गांव के सभी मामलों में तर्क–वितर्क करती थी, पूरे समुदाय के लिए लाभकारी कानूनों का निर्माण किया जाता था, नियमित न्याय–प्रक्रिया एवं जांचों में अपराधियों को दण्डित किया जाता था। गांव की विविध गतिविधियों का केन्द्र सभा होती थी जिसमें गांव के परिवारों के प्रतिनिधि, वृद्ध एवं अनुभवी जन भाग लेते थे। मौर्यकाल में पंचायतों को न्याय के अधिकार मिलने के कारण तत्कालीन समय मे अराजकता और राजकीय न्यायालयों का अभाव था। ग्राम सभाएं या पंचायतें सार्वजनिक हित की योजनाए भी बनाती थी।

गुप्तकाल में भी ग्राम प्रमुख व लेखाकार सक्रिय थे। वाचमैन से गांव का शासन चलानें में सहायता मिलती थी। अलतेकर के कथनानुसार "गांव का प्रशासन ग्रामध्यक्ष नामक पद धारण करने वाले मुखिया के अधीन था। इस युग में ग्राम सभा की सहायता से शाही अधिकारियों द्वारा न्याय किया जाता था। कुछ मामलों में, तो सभा ही न्याय–कार्य संपादित करती थी तथा सजा सुना देती थी। प्राचीनकाल में पंचायतें अपने आप में एक समग्र संस्थाएं होती थीं, जो ग्रामीणों को प्रतिदिन के कार्यों में मार्गदर्शन प्रदान करती थीं। ग्रामीण जनता की समस्याओं को ये संस्थाएं भली प्रकार से सुलझाते थे।"[3]

मध्य युग में प्रत्येक ग्राम की एक सभा या महासभा होती थी जो अपने क्षेत्र में शासन का संपूर्ण कार्य संभालती थी। शुक्रनीति में भी ग्राम पंचायत का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार पंचायत के समस्त सदस्य निर्वाचित होते थे। यह पंचायत प्रशासकीय और न्यायिक दोनों शक्तियों से युक्त थी। गांव प्रशासन की यह ईकाई मुगलकाल काल में भी थी, किन्तु कतिपय परिवर्तन कर दिये गये थे। प्रत्येक गांव में परम्परागत स्थानीय अधिकारी होते थे सर्वाधिक महत्पूर्ण पद मुखिया का होता था, जिसे प्रायः पटेल कहा जाता था तथा जो राजस्व का संग्रह करता था।

राजस्थान से प्राप्त लेखों से ज्ञात होता है कि यहां पर कार्यकारिणी समितियां, जिन्हें ग्राम पंचायत कहना अधिक सही होगा विद्यमान थी। वे 'पंचकुली' कहलाती थीं और ये मुखिया की अध्यक्षता में कार्य करती थीं। राजस्थान के आदिम मूल निवासी मीणा, गुर्जर व भील माने गये थे। छठी व सातवीं शताब्दी में राजस्थान में राजपूत, यौद्धेय और यादव आये। इस क्षेत्र में भील–मीणों में व्यवस्थित ग्राम सभा की पुरानी परम्पराएं विद्यमान थीं तथा ग्रामसभा एक शक्तिशाली संस्था थी। इसके द्वारा महत्वपूर्ण स्थानीय विषयों पर निर्णय लिए जाते थे। इसके निर्णय सभी लोगों को स्वीकार्य होते थे।[4]

हमारा देश प्राचीन काल से ही 'सोने की चिडिया' के नाम से जाना जाता रहा है। भारत लगभग 200 वर्ष तक अंग्रेजों की दासता में रही। इस काल में गांवों की दशा सुधारने की दिशा में कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये, इसलिए गांवों की दशा पहले से अधिक बदतर हो गई। ब्रिटिश शासन काल से पहले ही भारत के अधिकांश भागों में पंचायतें निर्जीव और निष्क्रिय हो चुकी थी। ग्रामों की स्वायत्तता तथा स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएं अठारवीं शताब्दी के मध्य में आते–आते प्रायः समाप्त हो गई थी। अंग्रेज शासकों ने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारी तंत्र को प्रोत्साहित किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य अपने शासकों को प्रसन्न रखकर भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण करना था।

सन् 1870 में लार्ड मेयों द्वारा स्वशासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उस क्षेत्र में आर्थिक विकेन्द्रीकरण करके उठाया। मेयो के प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध किया जाये। इसमें ब्रिटिश शासकों की स्वार्थता निहित थी क्योंकि इससे करों को अधिक सरलता से लगाया और वसूल किया जा सकता था। सन् 1882 में स्थानीय स्वशासन के विकास में एक नये अध्याय का शुभारंभ हुआ। 18 मई, 1882 को स्थानीय स्वशासन के सन्दर्भ में एक प्रस्ताव आया, जिसकों स्थानीय सरकारों का 'मेग्नाकार्टा' कहा गया और लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक स्वीकारा गया। 28 दिसम्बर, 1885 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना होने से उसने ग्रामीण विकास के लक्ष्यों की ओर प्रतिबद्धता दिखाई।[5]

भारत शासन अधिनियम 1909, 1919 तथा 1935 में स्वशासन की व्यवस्था को अपनाते हुए प्रान्तों को इस क्षेत्र में पर्याप्त अधिकार दिये गये। विकेन्द्रीकरण पर शाही आयोग (1909 ई.) की सिफारिशों को सन् 1915 के भारत सरकार के स्थानीय स्वशासन के प्रस्ताव में स्थान मिला। भारतीय शासन अधिनियम, 1919 द्वारा स्थानीय स्वशासनों को राज्यों की स्थानान्तरित सूची में रख दिया गया। उसकी पूर्ण जिम्मेदारी मंत्रियों को सौप दी गई। भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा राज्यों से प्रान्तीय स्वशासन की व्यवस्था करते हुए उन्हें स्वतंत्र व स्वशासित संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। प्रत्येक प्रान्त में ग्राम पंचायतों के विकास हेतु कानून बनाये गये। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से लेकर स्वतन्त्रता से पूर्व भी ग्रामीण विकास की दिशा में कुछ कदम उठाये गये। विभिन्न कालों एवं परिस्थितियों में ग्रामीण विकास की दर कभी तीव्र तो कभी मन्द रही। इस समयावधि में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग ग्रामीण था। परन्तु ग्रामीण विकास अपेक्षाकृत कम हुआ।

सन् 1947 में देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही ग्रामीण विकास एवं किसानों के कल्याण हेतु अनेक कदम उठाये गये। जिन राज्यों में पूर्व में जमींदारी प्रथा प्रचलित थी, उसका उन्मूलन किया गया। नेहरूजी ने पंचायती राज व्यवस्था पर बल देकर इसे नवजीवन प्रदान किया। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण विकास को बढ़ावा दिया गया तथा इस हेतु गाँवों में सामुदायिक विकास केन्द्रों की स्थापना की गई। ग्रामीण विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक विशेष कार्यक्रमों को स्थान दिया गया। गाँवों में विद्युत, जल, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा ग्रामीण औद्योगीकरण सहित अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएं बनायी गयी।[6]

प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम का पहला प्रयास था, जिसका शुभारम्भ 2 अक्टूबर, 1952 को महात्मा गाँधी जयन्ती के दिन पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा किया गया। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन् 1952–57) में ग्रामीण विकास कार्यक्रम को प्रमुखता प्रदान की गयी थी। सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामवासियों की सभी बड़ी समस्याओं को हल करना था। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य स्वयं के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन करना, कृषि के सुधार तथा कुटीर उद्योगों के प्रसार द्वारा गाँवों का आर्थिक पुनरूत्थान करना था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लोगों के अधिकतम कल्याण का प्रवर्तन करना था। सामुदायिक परियोजनाओं के साथ–साथ एक वर्ष उपरान्त ग्रामीण पुर्ननिर्माण का एक और कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसे राष्ट्रीय प्रसार सेवा का नाम दिया गया।

सामुदायिक विकास के खण्ड एवं जिला स्तर के प्रशासन का उत्तरदायित्व नियमित नौकरशाही को ही सौंपा गया था, किन्तु संगठनात्मक संरचना में परिवर्तन कर दिया गया। इस परिवर्तन में ध्यान रखा गया था कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के एकीकृत कार्यक्रम पर जो बल दिया गया था, वह उसमें प्रतिबिम्बित हो सके और कार्य–नीति को समुचित महत्त्व दिया जा सके। सामुदायिक विकास के लिए समय–सीमा निर्धारित की गई और ऐसा लगने लगा कि वास्तव में गाँवों का पुनः उद्धार होगा। लेकिन जल्दी ही उत्साह की चिंगारी ठण्डी पड़ने लगी और योजना आयोग ने इन कार्यक्रमों का आंकलन एवं मूल्यांकन करना शुरू कर दिया।[7]

देश में सबसे पहले पंचायती राज की स्थापना का श्रेय राजस्थान को ही जाता है, 2 अक्टूबर 1959 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राज्य के नागौर जिले में पंचायती राज का उद्घाटन कर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रथम चरण की शुरूआत की। भारत में पंचायती राज का वर्तमान स्वरूप संविधान के 73 वें संशोधन, 1992 पर आधारित है, इस संशोधन के अनुसार सभी राज्यों के पंचायत कानून बदले जाने से फलस्वरूप राजस्थान में राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 एवं राजस्थान पंचायती राज नियम, 1996 लागू कर दिए गये।

2 अक्टूबर 2023 को वर्तमान पंचायती राज को 64 वर्ष पूरे हो गये तथा वर्तमान तक आज पंचायती राज में सत्ता विकेन्द्रीकरण के बड़े आकार के साथ–साथ 33 प्रतिशत महिलाओं के आरक्षण द्वारा महिलाओं को ग्राम पंचायतो व शहरी निकायों में भागीदारी का अवसर मिला अर्थात् ग्रामीणों एवं महिलाओं के सशक्तिकरण के संदर्भ में इसे प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का क्रान्तिकारी प्रयोग कहा जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों के विवेचन के बाद यह कहना समीचीन होगा कि इस विषय की महत्ता को स्वीकार करने में कोई संदेह नहीं होने के उपरांत भी इसकी तरसती वांछनीयता की स्थिति को हकीकत में बदलने के लिए इसका उद्देश्यपरक व व्यावहारिक अध्ययन आवश्यक है।[8]

आधे से ज्यादा लोगों पर अत्याचार की घटनाएँ, उपेक्षित एवं दुर्बल वर्गों के लोगो के साथ भेदभाव, आय का बढ़ता असमान वितरण, ग्रामीण व शहरी जीवनशैली के बढ़ते अंतराल, भूखमरी व बेराजगारी, व्यावहारिकता तथा वास्तविकता की कमी, भ्रष्ट्राचार के कारण सौदेबाजी की राजनीतिक व प्रशासनिक संस्कृति देखी जा सकती है। साथ ही कानूनी बाह्यता की औपचारिकता की इतिश्री करके महिलाओं की भागीदारी व सशक्तिकरण के जुमलों को अपनाकर एक भ्रमपूर्ण स्थिति के अन्तर्गत उसके स्थान पर उनके संबधी नेतृत्व प्रदान करते हुए सरपंच पति या प्रधान पति के रूप में स्वयंभू पदसृजित करने की आम जनता की स्वीकारोक्ति देखी जा सकती है।

महिलाओं की सहभागिता के सम्बन्ध में अनेक समस्याएं आज भी विद्यमान है। अकाल की समस्या पंचायतीराज व्यवस्था के लिए हमेशा से ही मुँह फैलाये खड़ी है। इन समस्याओं के अतिरिक्त सबसे बड़ी समस्या जो हमेशा से बनी हुई है व है भ्रष्टाचार की समस्या। इस समस्या से पंचायतीराज व्यवस्था की सम्पूर्ण गतिविधियों सन्देह के घेरे मे आ जाती है। इनके अतिरिक्त वित्तीय संकट, चुनावों में बेशुमार खर्चा, फर्जी मतदान, योग्यता प्रावधानों सम्बन्धी बाधाओं के कारण सही उम्मीदवार बनाने का संकट एवं आरक्षित वर्गों के जनप्रतिनीधियों की विकलांग स्थिति एवं दूसरों पर निर्भरता आदि प्रमुख हैं। पंचायतीराज में व्याप्त इन समस्त समस्याओं का निराकरण आज आवश्यक है, इनके निराकरण के बिना पंचायतीराज व्यवस्था की सफलता सर्वथा संदिग्ध है।

पंचायती राज भारत के प्रजातंत्र की आत्मा है। पंचायती राज व्यवस्था का उद्देश्य लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के साथ भारत के विशाल जनसमूह को प्रजातंत्र की शिक्षा देना तथा उन्हें प्रजातंत्र के सक्रिय नागरिक बनाने की क्षमता प्रदान करना है। विकास का लाभ सबसे पहले उसको मिलना चाहिये जो सबसे कमजोर, सबसे पीछे और सबसे गरीब हो। समाज के पुनः निर्माण और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा विकास की योजना सबसे नीचे की सीढ़ी से शुरू होनी चाहिए यदि हम यह चाहते है कि समाज में सबको समान अवसर प्राप्त हो, समता बढ़े, शोषण और गरीबी समाप्त हो, तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण समाज के अंतिम व्यक्ति तक करना होगा और यह कार्य पंचायती राज द्वारा ही प्रभावी रूप से सम्पादित किया जा सकता है। आजादी के बाद ग्रामवासियों के सहयोग से कायाकल्प करने के उद्देश्य से सामुदायिक विकास नामक कार्यक्रम 1952 में शुरू किया गया किन्तु सफल नहीं हो सका, इसका मूलभूत कारण यह था कि इन कार्यक्रमों के निर्माण और क्रियान्वयन में स्थानीय जनता की भागीदारी का अभाव था।[9]

पंचायतीराज प्रजातंत्र का आधार स्तम्भ है। सबसे उपयुक्त प्रजातंत्र उसको माना जाता है, जिससे सत्ता का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो। विकसित देशों में प्रजातंत्रीय पृष्ठभूमि तथा परम्पराएं प्राचीन होने के कारण वहां पर सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए प्रजातंत्र की सीख धरातल स्तर तक मिलनी चाहिए क्योंकि भारत में प्रजातंत्रीय परम्पराओं का अभाव पाया जाता है। भारत में काफी समय तक राजतंत्रीय व्यवस्था रही इसके बाद कई वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा इसलिए प्रजातंत्र की स्वस्थ परम्पराएं विकसित नहीं हो पायी। भारतीय संविधान के निर्माण के समय इस बात को ध्यान में रखा गया और लोकतांत्रिक विकेन्दीकरण का प्रावधान नीति–निर्देशक तत्वों में किया गया। प्रारम्भ में किसी प्रकार की पंचायतीराज संथाएं विकसित नहीं हो पायी लेकिन भारत के संविधान लागू होने के पश्चात् से ही यह अनुभव किया जाने लगा कि भारत में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की जाये। इसी बात को ध्यान में रखते हुए श्री बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ और उस समिति के प्रतिवेदन के आधार पर 1959 में राजस्थान में पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना की गई तथा इसके पश्चात् धीरे–धीरे राजस्थान की तर्ज पर अन्य राज्यों में भी पंचायती राज व्यवस्था स्थापित की गई। यह पंचायतराज व्यवस्था सही ढंग से कार्य कर रही थी लेकिन कुछ समय बाद इसके निर्वाचन नहीं हो पाये और यह सोचा गया कि इसको प्रभावी कैसे बनाया जाये। इसके लिए कई प्रकार के प्रतिवेदन दिये गये पर पंचायतें ज्यादा प्रभावी नहीं हो पायी। पंचायतीराज संस्थाऐं सही ढंग से कार्य नहीं कर रही थी।[10]

73वें संविधान संशोधनों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण स्थानीय स्वशासन को अधिक प्रभावी बनाने की व्यवस्था की गई थी। इन संविधान संशोधनों के माध्यमों से पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इन संशोधनों के आधार पर राजस्थान सरकार ने पंचायतीराज अधिनियम 1994 के तहत पंचायतों में चुनाव करवायें गए। पंचायतों का कार्यकाल निश्चित किया गया। पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा होने के बाद दूसरी बार भी चुनाव सम्पन्न हुए।[11]

पंचायतीराज की अतीत से चली आ रही लम्बी यात्रा का मंथन करने पर ज्ञात होता है कि इसके स्वरूप, कार्यप्रणाली, विकास योजनाओं की भारी भरकम सूची, अनेक समितियों के द्वारा सुझाई गयी नवाचारों की अनुशंसायें, कार्यान्विति के बदलते आयाम, केन्द्र व राज्य स्तर पर अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों में उलझी मांगे, निरक्षर व उदासीन अभाव ग्रसित समुदाय की विवशता के कारण अथक प्रयासों के बाद भी इसकी मूल भावना के नजदीक जाने को तरसती दिखाई पड़ती है।

निष्कर्ष

पंचायतीराज व्यवस्था अपनी स्थापना से लेकर आज तक कई स्थाई और अस्थाई समस्याओं से जूझ रही है। पंचायतीराज व्यवस्था के द्वारा जो लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, ग्रामीण विकास एवं उत्थान से सम्बन्धित कार्य किये जाते हैं, उसका लाभ अन्तिम स्तर तक पहुंचा पाना एक दुष्कर कार्य हो गया है पंचायतीराज व्यवस्था अनेक सामजिक समस्याओं उनमें साक्षरता, राजनीतिक चेतना, अलोकतांत्रिक सामाजिक एवं पारिवारिक ढांचा, जातिय – धार्मिक व कमजोर वर्गों का शक्तिहीन होना आदि प्रमुख है। नेतृत्व सम्बन्धी समस्या में ग्रामीण नेतृत्व, निःस्वार्थ नेतृत्व का अभाव प्रमुख है। प्रशासनिक अधिकारियों एवं जन–प्रतिनिधियों में आपसी असांमजस्य, वित्तीय समस्याओं में साधनों का अभाव एवं

नियन्त्रण की समस्या। पंचायतीराज संस्थाओं पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में भी अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। राजनीतिक समस्याओं में राजनीतिक अविश्वास आधारित व्यवस्था का होना, राजनीतिक दलों की भागीदारी आदि प्रमुख है। आरक्षण के सम्बन्ध में भी अनेक व्यावहारिक समस्याएं है।

संदर्भ

1. महिपाल (2019) 'पंचायती राज–चुनौतियां एवं संभावनाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, पृ. 5–6
2. बी.सी. नरूला (2016) 'पंचायती राज व्यवस्था, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, पृ. 29
3. प्रमोद कुमार अग्रवाल (2018) 'भारत में पंचायती राज, प्रभात प्रकाशन, न्यू देहली, पृ. 15–21
4. रविन्द्र शर्मा (2019) 'भारत में स्थानीय प्रशासन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 124
5. माथुर, पी.सी. एवं शर्मा, (2013) 'भारत में पंचायती राज निर्वाचन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ. 137
6. बी.सी. नरूला (2016) 'पंचायती राज व्यवस्था, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, पृ. 43
7. अशोक शर्मा (2021) 'भारत में स्थानीय प्रशासन, आरबीएसए, जयपुर, पृ. 221
8. https://rdpr.rajasthan.gov.in/home
9. इंदिरा गांधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जवाहर लाल नेहरू मार्ग, जयपुर, 2017, पृ. 29
10. महिपाल (2019) 'पंचायती राज–चुनौतियां एवं संभावनाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, पृ. 23
11. https://www.india.gov.in/my.government/constitution.india/amendments/constitution.india-seventy-third-amendment.act-1993